अध्याय - 2

हिन्दी फिल्मों में चित्रित 'लेस्बियन' - संघर्ष एवं समस्याएँ

अध्याय - 2

हिन्दी फिल्मों में चित्रित 'लेस्बियन' - संघर्ष एवं समस्याएँ

फिल्म सामाजिक अभिव्यक्ति का एक मज़बूत ज़रिया है । समाज से जुडे रहकर सामाजिक समस्याओं को जनता तक आसानी से पहुँचाने में दृश्य माध्यम के रूप में सिनेमा का स्थान अद्‌वितीय है । समाज में व्याप्त रुढ़ियों, अंधविश्वासों, गैर जरूरी सामाजिक मान्यताओं या परंपराओं का विघटन करने में हिन्दी सिनेमा ने अपनी अहम भूमिका निभाई है । स्त्री, दलित, आदिवासी, दिव्यांग, वृद्ध, बाल, अल्पसंख्यक जैसे अन्य सामाजिक विमर्शों के साथ ही सिनेमा ने समलैंगिक समाज को भी अपने व्यापक दायरे के भीतर समेटा और दर्शकों को स्त्री-पुरुष के अलावा उपेक्षित दुनिया के अनछुए पहलुओं से परिचित कराया । समलैंगिकता की अस्मिताई पहचान हो या उनके अस्तित्व से जुड़े अन्य प्रश्न, इन सबको रेखांकित करने का कार्य फिल्म ने जरूर किया है । सिनेमा ने हर युग में और लगभग हर स्तर पर अपना यह कर्तव्य निभाया है ।

2.1 हिंदी फिल्म का विकासात्मक परिदृश्य

भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है । कलाओं के तहत चित्रकला, वास्तुकला, रंगमंच, नृत्य, संगीत, साहित्य और फिल्म ने भारत की इस पहचान को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया है । इन सभी कला रूपों में, फिल्म ने देश की सांस्कृतिक धरोहर को सुदृढ़ बनाने में अविस्मरणीय योगदान दिया है, क्योंकि यह अन्य कलात्मक अभिव्यक्तियों की तुलना में वैश्विक स्तर पर अधिक सहजता से पहुँचने में सक्षम है ।

फिल्म एक साथ कला, विज्ञान, प्रसिद्धि एवं अधिकतर लोगों के लिए मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है । विश्व प्रसिद्ध भारतीय फिल्माकार सत्यजीत रे ने फिल्म की परिभाषा

इस प्रकार दी है, “फिल्म छवि है, फिल्म शब्द है, फिल्म गति है, फिल्म नाटक है, फिल्म कहानी है, फिल्म संगीत है, फिल्म में मुश्किल से एक मिनिट का टुकड़ा भी इन बातों का साक्ष्य दिखा सकता है”[1] । प्रख्यात पटकथा लेखक मनोहर श्याम के अनुसार, “सिनेमा दृश्य-श्रव्य माध्यम है, जिसका मूलमंत्र है ‘बताओ मत, दिखाओ उधर नाटक का मूल मंत्र है’ बताओ मत दिखाओ”[2] ।

विश्वकोश में फिल्म को इस प्रकार परिभाषित किया है, “चित्रपट हे कलात्मक व तंत्रज्ञान यांचा असलेले असे बहुमाध्यम असून लोकजनांचे व लोकशिक्षणाचे प्रभावी साधन आहे’ सिनेमा यह कलात्मक और तंत्रज्ञान का संगम से बना बहुआयामी माध्यम है, जो लोकरंजन तथा लोकशिक्षा का प्रभावी साधन है”[3] । इस प्रकार सिनेमा का उद्देश्य भी समाज हित के साथ जुड़ा हुआ है अथवा सामाजिक जीवन से जुड़े साहित्य पर आधारित है ।

2.1.1 हिन्दी फिल्म: एक नज़रिया

हिंदी सिनेमा, जिसे आमतौर पर बॉलीवुड कहा जाता है, भारतीय फिल्म उद्योग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । यह सिर्फ मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि भारतीय समाज, संस्कृति और इतिहास को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण भी है ।

सन् 1895 में फ्रांस की राजधानी पेरिस में सिनेमा का जन्म हुआ । 28 दिसंबर, 1895 को पेरिस के ‘ग्रैंड कैफे’ रेस्तरां में लूमियर बंधुओं द्वारा सर्वप्रथम फिल्म प्रदर्शित की गई । इस प्रकार यूरोप में लूमियर बंधुओं की फिल्म से ही सिनेमा की शुरुआत मानी जाती है । जाहिर था, “मनुष्य ने अपने जीवन और प्रकृति के यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए जितनी कलाओं का आविष्कार किया था, उनमें यह सबसे ज़्यादा प्रभावशाली था”[4]।

भारत में सिनेमा का प्रवेश 7 जुलाई 1896 को तब हुआ जब मुंबई के काला घोड़ा स्थित ‘वाटसन होटल’ में लूमियर बंधुओं ने 6 फिल्में (वर्कर्स लीविंग द ल्यूमियर फैक्ट्री, द

अराइवल ऑफ अ ट्रेन एट ला सियोटैट स्टेशन, बेबीज़ लंच, फिशिंग फॉर गोल्डफिश, द गार्डनर्स, द एक्सेक्यूशन ऑफ अ कंडेम्ड मैन) का पैकेज 'मैजिक लैंप' फिल्म दिखाई, जो भारत में पर्दे पर दिखाई जाने वाली पहली फिल्म थी ।

सन् 1913 में भारत में भारतीय फिल्म का श्रीगणेश हुआ । पायोनियर ऑफ इंडियन सिनेमा' इस उपाधि से सम्मानित श्रद्धेय धुंडीराज गोविंद फालके उर्फ दादासाहब फालके (जन्म- 30 अप्रैल 1870, मृत्यु 16 फरवरी 1944) ने सन् 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' फिल्म बनाकर भारतीय सिनेमा की नींव डाली । इन्हें भारतीय फिल्मों का जनक कहा जाता है । इस प्रकार, "भारत में, दादा साहब की फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' को पहली भारतीय फिल्म मानते हुए सन् 2013 में भारतीय सिनेमा की शताब्दी मनायी जा चुकी है"[5] । यह पहली फिल्म थी जिसे संपूर्ण रूप से प्रथम भारतीय फीचर फिल्म की मान्यता प्राप्त है । दादा साहब द्वारा बनाई अन्य फिल्म- 'भस्मासूर मोहिनी', 'सत्यवान सावित्री', 'लंकावहन', 'मोहनी भस्मासुर', 'कृष्ण-जन्म', 'कीचकं—वध', 'सौरंधी', 'कालिया मर्दन', 'शकुंतला' आदि प्रदर्शित हुईं जिन्होंने देश की जनता में सांस्कृतिक चेतना की लहर दौड़ाई ।

14 मार्च 1931 को भारत में 'आलम आरा' नामक पहला सवाक फिल्म हिन्दी में बनाई । "नाटकीयता से भरपूर 'आलम आरा' में मधुर गानों की भरमार थी"[6] । इस फिल्म का गाना 'दे खुदा के नाम पर...' देश का पहला गाना बना तथा इसे गाने वाले 'वजीर मुहम्मद खान' पहले गायक बने । इसी तरह इसका दूसरा गीत 'दला दिलाए या रब सितंगारों से.... गाने वाली', जुबैदा पहली गायिका और नायिका कहलायी । सन् 1931 में भारत में 27 फिल्में बनीं, जिनमें 22 हिंदी, शेष पाँच बंगला, तमिल, तेलुगु और अंग्रेज़ी भाषा में थीं । इसी साल की एक अन्य फिल्म 'लैला-मजनु' में 24 गाने थे । इस प्रकार हम देखें, तो सन् 1931 भारतीय सिनेमा के लिए एक अविस्मरणीय वर्ष रहा है ।

2.1.1.1 स्वतंत्रता पूर्व सवाक फिल्मों का युग : 1931 से 1947

हिंदी सिनेमा के प्रारंभिक युग में धार्मिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित मूक फिल्में निर्मित की जाती थीं । इस समय सिनेमा का मुख्य आधार रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य थे । सन् 1931 से 1947 का दौर जागृति, सुधार और स्वतंत्रता संग्राम का समय था, जब हिंदुस्तान अंग्रेजी हुकूमत के अधीन था । परिणामस्वरूप, इस काल में फिल्मों की कथावस्तु में सामाजिक विसंगतियाँ, दलित उद्धार, वेश्याओं की समस्याएँ, सती प्रथा, स्वतंत्रता आंदोलन, देशभक्ति और जनजागरण जैसे संवेदनशील विषय प्रमुखता से उभरने लगे ।

सन् 1925 में बाबूराव पेंटर द्वारा बनाई गई पहली सामाजिक फिल्म 'सावकारी पाश' को कई फिल्म समीक्षकों ने भारत की पहली कला फिल्म के रूप में स्वीकार किया है । इस फिल्म में वी. शांताराम ने एक किसान की भूमिका निभाई थी, जिसकी ज़मीन एक लालची साहूकार द्वारा छीन ली जाती है, और वह मजबूर होकर शहर में मजदूरी करता है । सामाजिक मुद्दों को लेकर बनाई गई इस फिल्म को काफी सराहना मिली और इसे पहली यथार्थवादी फिल्म भी कहा जा सकता है ।

1936 का वर्ष भारतीय साहित्य और सिनेमा के इतिहास में विशेष महत्व रखता है । इसी वर्ष 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ'(Indian Progressive Writer's Association) की स्थापना लखनऊ में हुई, जिसका उद्देश्य साहित्य और कला के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाना था । इस आंदोलन ने जातिवाद, पितृसत्ता, सामंती व्यवस्था और आर्थिक असमानता जैसे मुद्दों को उजागर किया और साहित्य को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखते हुए सामाजिक सुधार का माध्यम बनाया । प्रेमचंद, सआदत हसन मंटो, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, इस्मत चुगताई, मजरूह सुल्तानपुरी और कृष्ण चंदर जैसे प्रमुख लेखकों ने इस आंदोलन में योगदान दिया ।

प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर फिल्मों का निर्माण भी होने लगा । 'पुकार', 'रोटी', 'दुनिया न माने', 'डॉक्टर कोटणीस की अमर कहानी' जैसी फिल्मों ने सामाजिक विसंगतियों और वर्गीय समस्याओं पर प्रकाश डाला । 1936 में बॉम्बे टॉकीज द्वारा निर्मित 'अछूत कन्या' ने सामाजिक न्याय, छुआछूत और जातिप्रथा की निंदा की । 1930-1940 के दशक में स्वतंत्रता संग्राम, विश्व युद्ध और भारत-पाकिस्तान विभाजन जैसे प्रमुख मुद्दों पर भी फिल्में बनने लगीं ।

2.1.1.2 स्वातन्त्र्योत्तर सवाक फिल्मों का युग 1947- आजतक

हिन्दी सिनेमा के विकास दृष्टि में 1950 से लेकर 1970 तक का समय भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है । सिनेमा मात्र मनोरंजन का साधन नहीं रहा, बल्कि यह समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब बनकर उभरा, जो समय के बदलावों और मानव अनुभूतियों का सजीव चित्रण करता है । इस युग में संगीत और भावपूर्ण गीतों ने सिनेमा को एक नई ऊंचाई पर पहुंचाया । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय समाज ने आदर्शों और मूल्यों पर विचार करना प्रारंभ किया । यही चिंतन फिल्मों की आत्मा बन गया, जहाँ नैतिकता, समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे, प्रेम और सामूहिक जीवन जैसे तत्वों को आधार बनाकर कहानियां रची गईं । फिल्मों में सामाजिक विषमताओं को भी गंभीरता से उठाया । गरीबी, असमानता, जातिगत भेदभाव, सांप्रदायिकता और हिंसा जैसे मुद्दे कथानकों का अभिन्न हिस्सा बन गए। व्यक्तिगत प्रेम से अधिक, उस समय की कहानियों में समाज, परिवार और राष्ट्र की गूंज सुनाई देती थी । यह वह दौर था जब सिनेमा केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समाज के सुधार और जागरूकता का माध्यम बन गया । यह समय भारतीय सिनेमा को न केवल भावनात्मक गहराई प्रदान की, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन का साधन भी बनाया । भारतीय फिल्म निर्देशक सत्यजीत रे के कहना है, "सिनेमा केवल रोशनी और छायाओं का खेल नहीं है; यह समाज की आत्मा को महसूस

करने और उसे चित्रित करने की कला है"[7]। इस युग की फिल्में वास्तव में इसी भावना का प्रतीक थीं ।

सन् 1955 में मुंबई में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह का भारतीय सिनेमा जगत पर गहरा प्रभाव पड़ा । सत्यजीत रे के 'पाथेर पांचाली' ने हिंदी जगत को नया मोड़ दिया । फिल्म को अभूतपूर्व देशी-विदेशी पुरस्कारों के साथ साथ फिल्म जगत का सर्वश्रेष्ठ केन्स पुरस्कार दिया गया । 1957 में प्रदर्शित फिल्म 'मदर इंडिया', मूल रूप से 1927 में प्रकाशित पश्चिमी लेखिका कैथरीन मेयो की पुस्तक 'मदर इंडिया' से प्रेरित थी । इस पुस्तक को ब्रिटिश शासन के संदर्भ में भारतीय स्वतंत्रता और स्वशासन की मांग का खंडन करने के उद्देश्य से लिखा गया था । इसमें भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक कमजोरियों को उजागर करने का प्रयास किया गया था । लेखिका ने बलात्कार, समलैंगिकता, वेश्यावृत्ति और बाल विवाह जैसी समस्याओं को पुस्तक में केंद्र में रखते हुए भारतीय समाज को पिछड़े और असभ्य के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया ।

भारतीय स्वतंत्रता के बाद सिनेमा, साहित्य और कला ने समाज के जीवन को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया । इन माध्यमों ने जातिवाद, छुआछूत और सामाजिक असमानता जैसे मुद्दों को उजागर करते हुए महिलाओं के अधिकार, पितृसत्ता और शिक्षा से जुड़ी समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया। औद्योगीकरण और शहरीकरण के प्रभावों के साथ-साथ गरीबी, बेरोजगारी और ग्रामीण-शहरी जीवन के संघर्षों को भी प्रमुखता दी गई । स्वतंत्रता संग्राम के बाद उत्पन्न राजनीतिक चुनौतियाँ, भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिकता जैसे विषय भी रचनात्मक अभिव्यक्तियों का हिस्सा बने । प्रगतिशील विचारों से प्रेरित साहित्य और फिल्मों ने सामाजिक सुधारों, दहेज प्रथा, बाल विवाह और दलित अधिकारों जैसे मुद्दों पर प्रकाश डाला । इसके अतिरिक्त, शिक्षा, युवाओं की आकांक्षाएँ, वैज्ञानिक प्रगति और भारतीय प्रवासियों के जीवन से जुड़े पहलुओं को भी इन रचनाओं में स्थान मिला । इन

विभिन्न दृष्टिकोणों के माध्यम से भारतीय समाज की जटिलताओं, संघर्षों और बदलावों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया, जिससे मनोरंजन के साथ-साथ समाज में जागरूकता और परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ । 'दो बीघा जमीन', 'मधुमती', 'मदर इंडिया, आवरा', 'श्री 420', 'मुगले-ए-आजम' यह उस दशक की प्रतिनिधि फिल्में थीं । लेकिन 1970 के दशक ने हिंदी फिल्मों की कहानियों का रुख बदल दिया । भारत में राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक अव्यवस्था, लोगों में स्वतंत्र भारत के बारे में देखे सपनों को निराशा में परिवर्तित होते हुए इन सभी सामाजिक मानसिकताओं का प्रतिबिंब इस दशक के सिनेमा ने समेट लिया । 'अॅग्री यंग मॅन' के रूप में हिंदी सिनेमा में अमिताभ बच्चन का प्रवेश हुआ और फिल्मों में 'नायक' को लेकर बनी आज तक की धारणाएँ ही परिवर्तित हो गयी । नायक आम आदमी का प्रतिनिधित्व करने लगा । सिनेमा में सामाजिक संघर्षों की सजीव प्रस्तुति ने इसे समाज की वास्तविकताओं का प्रतिबिंब बनाने के साथ-साथ बदलाव की दिशा में एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में स्थापित किया है ।

2.1.1.3 हिन्दी फिल्मों में समलैंगिकता - उद्भव एवं विकास

समलैंगिकता(Homosexuality) एक व्यक्ति की यौन, भावनात्मक, और रोमांटिक आकर्षण की वह अवस्था है, जो समान लिंग के व्यक्ति के प्रति होती है । यह एक प्राकृतिक यौन प्रवृत्ति है, जिसमें एक पुरुष पुरुष के प्रति या एक महिला महिला के प्रति आकर्षित होती है । समलैंगिकता मानव समाज का एक हिस्सा है और इसे एल जी बी टी क्यु + समुदाय के अंतर्गत पहचाना जाता है ।

समलैंगिकता भारतीय समाज और हिंदी सिनेमा में लंबे समय तक एक वर्जित विषय बनी रही । सामाजिक रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण ने इसे सिनेमा के परदे पर स्थान पाने से रोक दिया । सेक्स और कामुकता पर चर्चा नैतिक प्रतिबंधों के कारण प्रतिबंधित थी, और समलैंगिकता को एक मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में देखा जाता था ।

समय के साथ, बदलते सामाजिक दृष्टिकोण और वैश्विक प्रगतिशील आंदोलनों ने हिंदी सिनेमा को इस विषय की ओर मुखातिब होने के लिए प्रेरित किया ।

1952 में सेंट्रल बोर्ड ऑफ फिल्म सर्टिफिकेशन (CBFC) की स्थापना के बाद, फिल्मों पर सेंसरशिप कड़ी हो गई, लेकिन समलैंगिकता जैसे विषयों पर चर्चा शुरू होने लगी । हालांकि, भारत में समलैंगिकता कानूनी रूप से अपराध थी, और 1970 के दशक तक इसे मनोवैज्ञानिक विकार माना जाता था । इस दौर में मुख्यधारा की फिल्मों में सामाजिक और पारिवारिक विषयों को प्राथमिकता दी गई, लेकिन कुछ निर्देशकों ने साहस दिखाते हुए वर्जित विषयों, विशेष रूप से समलैंगिकता, को अपने सिनेमा का विषय बनाया ।

1971 में प्रेम कुमार द्वारा निर्देशित 'बदनाम बस्ती' भारत की पहली एल जी बी टी क्यु फिल्म मानी जाती है । हालांकि, यह फिल्म आम जनता के लिए उपलब्ध नहीं थी । 1970 और 1980 के दशक में, समलैंगिक किरदारों को हास्य के माध्यम से दिखाया जाता था, जिससे दर्शकों का मनोरंजन हो सके । उस समय की फिल्मों का मुख्य उद्देश्य हँसी-मज़ाक और हल्के-फुल्के मनोरंजन पर केंद्रित था । इस दृष्टिकोण ने LGBTQ समुदाय के प्रति एक पूर्वाग्रह और भेदभाव बनाए रखा ।

1980 के दशक में, पश्चिमी प्रभाव ने भारतीय सिनेमा को प्रभावित करना शुरू किया। फिल्मों में खुलेपन और नग्नता के साथ-साथ, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर चर्चा होने लगी। यह समय फिल्मों के विषय और प्रस्तुति में बदलाव का रहा । 1990 के दशक में, भारतीय सिनेमा ने एक्शन, हिंसा और गंभीर मुद्दों को शामिल करके एक नया स्वरूप अपनाया। इसी समय, वैश्विक स्तर पर क्वीर अधिकारों की चर्चा और जागरूकता बढ़ी, जिससे भारतीय सिनेमा में भी बदलाव की शुरुआत हुई ।

2000 के दशक में, 'माय ब्रदर निखिल' (2005) जैसी फिल्मों ने समलैंगिकता को संवेदनशील और गंभीरता से प्रस्तुत किया । यह फिल्म एक समलैंगिक व्यक्ति के संघर्ष

और एचआईवी/एड्स से जुड़े सामाजिक भेदभाव पर आधारित थी । इसके बाद 'दोस्ताना' (2008) ने मुख्यधारा में समलैंगिकता के विषय को मज़ाकिया तरीके से प्रस्तुत किया, लेकिन इसने चर्चा और जागरूकता को बढ़ावा दिया ।

2010 के बाद, फिल्मों में समलैंगिकता के प्रति दृष्टिकोण अधिक सकारात्मक और संवेदनशील हो गया । 'अलीगढ़'(2016) जैसी फिल्मों ने गहन और यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए समलैंगिकता के मुद्दों को समाज के सामने रखा । 2019 में भारतीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा धारा 377 को निरस्त करने के बाद, एल जी बी टी क्यु समुदाय को कानूनी मान्यता मिलने के साथ सिनेमा में भी इस विषय को अधिक खुलेपन और स्वीकृति के साथ दिखाया जाने लगा । 'शुभ मंगल ज्यादा सावधान' (2020) ने समलैंगिक प्रेम कहानी को मुख्यधारा में स्थान दिया और इसे मनोरंजक और संवेदनशील तरीके से पेश किया । इन सभी फिल्मों ने समलैंगिकता के प्रति समाज की सोच में बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । आज की फिल्मों में समलैंगिकता को एक सामान्य विषय के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो समाज में सकारात्मक बदलाव का संकेत है ।

स्वतंत्रता के बाद के दशकों में, हिंदी सिनेमा ने समलैंगिकता को उपेक्षा, व्यंग्य और हास्य से लेकर संवेदनशीलता और स्वीकृति तक प्रस्तुत करने का लंबा सफर तय किया है । आज, यह विषय भारतीय सिनेमा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है, जो न केवल एल जी बी टी क्यु समुदाय के संघर्षों को दिखाता है, बल्कि समाज में समानता और स्वीकृति को बढ़ावा देने का भी प्रयास करता है ।

अभिनेता आशुतोष राणा सिनेमा को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण मानते हुए इसे समाज का दर्पण कहते हैं । उनका कहना है कि "सिनेमा समाज का प्रतिनिधि नहीं, बल्कि उसका प्रतिबिंब है । जैसे-जैसे समाज बदलता है, सिनेमा भी उसी के अनुसार परिवर्तित होता है"[11]। वे बताते हैं कि पहले के दौर में हमारे नायक शिक्षक, पुलिसवाले या

क्रांतिकारी जैसे आदर्श और स्वच्छ छवि वाले पात्र हुआ करते थे, जो समाज के प्रेरणादायक वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे। वहीं, साहूकार, जमींदार और अन्य ताकतवर लोग, जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते थे, खलनायक के रूप में प्रस्तुत किए जाते थे। समय के साथ समाज में बदलाव आया और उसी के अनुरूप सिनेमा ने भी करवट ली । 'जंजीर' में अमिताभ बच्चन ने एक आम आदमी के नायकत्व को सिनेमा में प्रस्तुत किया । इसके बाद 'काला पत्थर', 'सुहाग', और 'मुकद्दर का सिकंदर' जैसी फिल्मों में इसी तरह का नायक देखने को मिला । ऐसे में खलनायकों का स्वरूप भी बदलना स्वाभाविक था, जो नए सामाजिक संदर्भों और परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ । भारतीय हिंदी सिनेमा वर्तमानयुग में मानव जीवन का एक प्रमुख अंग बन गया है । हिंदी सिनेमा ने भारतीय समाज को हमेशा अलग-अलग राह दिखाकर प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया है । जन-जागरण, प्रबोधन, मनोरंजन, प्रचार- प्रसार, शिक्षा, तकनीकि तथा अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । हिंदी सिनेमा ने भारतीय जनमानस के जीवन में एक गहरी छाप छोड़ी है, अपने योगदान से इसे सांस्कृतिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से समृद्ध किया है ।

2.2 लेस्बीयन-अवधारणा एवं स्वरूप

'लेस्बियन' शब्द सिर्फ एक पहचान नहीं, बल्कि प्रेम, स्वीकृति, और स्वतंत्रता के आवेग की अभिव्यक्ति है, जो समाज की परंपरागत सीमाओं को चुनौती देने का कार्य करता है । यह उन महिलाओं का प्रतिबिंब है, जिन्होंने समाज के कठोर लिंग आधारित मानदंडों को तोड़ते हुए प्रेम को एक नई दिशा दी । साहित्य और कला के विमर्श में लेस्बियन प्रेम को सदैव एक अदृश्य भावना के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रहा । यह प्रेम केवल शारीरिक आकर्षण का प्रतीक नहीं, बल्कि भावनाओं की एक गहरी और आत्मीय अभिव्यक्ति है ।

'लेस्बियन' शब्द का प्रयोग उन महिलाओं को संबोधित करने के लिए किया जाता है जो खुद एक महिला होकर समान लिंग के साथ भावनात्मक और यौन संबंधों के प्रति प्राथमिकता को दर्शाता है । यह स्त्री- समलैंगिकता अचानक हमारे सामने प्रस्फुटित नहीं हुई है । ऐसा माना जाता है कि बी.सी छठी शती में 'लेस्बोस' नामक ग्रीक द्वीप में 'लेस्बियन' शब्द का जन्म हुआ । सप्पो 'लेस्बोस' द्वीप के एक प्राचीन यूनानी कवि थी, जो लगभग 620-570 ईसा पूर्व में रहते थे । उनकी अधिकांश कविताएँ स्त्री और उनके शरीर की सुंदरता का उल्लेख करती थीं ।

मध्य युग संदर्भ में, स्त्री समलैंगिकता को 'स्त्री-संग' या 'सौभाग्य-दायिनी' कहा जाता था, जिसका अर्थ है 'महिला साथी' या 'आशीर्वाद प्रदान करने वाली महिलाएँ' । समलैंगिक रिश्तों को स्त्री अंतरंगता का एक रूप मानता था, लेकिन यह यौन क्रिया से संबध नहीं रखती थी । उन्हें अक्सर विधवापन और ब्रहमचर्य से जोड़ा जाता था, और स्त्रीयों के लिए सामाजिक मानदंडों का उल्लंघन किए बिना अपनी भावनात्मक और शारीरिक जरूरतों को व्यक्त करने के एक तरीके के रूप में देखा जाता था । पुराणों तथा कामसूत्र जैसे अतिपुरातन ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है । कामसूत्र के पाँचवाँ अध्याय 'औपरिश्टकम' में स्त्रियों के बीच में होनेवाला सम्भोग पर जिक्र किया है ।

1886 में अल्गर्नन चार्ल्स स्विनबर्न की कविता सैफिक्स में 'लेस्बियन' शब्द का दो बार इस्तेमाल किया गया था, लेकिन यह लेस्बोस द्वीप के संदर्भ में था । जॉर्ज सेंट्सबरी ने 1875 में लेस्बियन स्टडीज का उपयोग करते हुए बौडेलेयर की कविता के बारे में लिखा । दो महिलाओं के बीच प्रेम कविता का मुख्य विषय है । 1870 में, महिलाओं के बीच यौन संबंधों को समलैंगिकता के रूप में संदर्भित किया गया था । लेस्बियन का पहली बार 1890 में चिकित्सा क्षेत्र में विशेषज्ञता के रूप में उपयोग किया गया था । 1925 तक इसे

चिकित्सा में स्थिर कर दिया गया था । फिर यह उन महिलाओं के लिए एक शब्द बन गया जो समलैंगिक के रूप में पहचान करती हैं ।

2.3 लेस्बियन पर आधारित हिन्दी फिल्म की सूची

हिंदी फिल्मों में लेस्बियन के संघर्ष और मुद्दों का चित्रण सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है । फिल्म न केवल समलैंगिकता की वास्तविकताओं को उजागर किया गया है, बल्कि इस पर आधारित संघर्षों और समस्याओं को भी दिखाया गया है । लेस्बियन पर आधारित हिन्दी फिल्मों की सूची अब तक काफी सीमित रही है, लेकिन निम्नलिखित फिल्मों ने इस गहन और महत्वपूर्ण विषय को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है । ये फिल्में समाज में समलैंगिकता के बारे में जागरूकता बढ़ाने और इस विषय पर चर्चा को बढ़ावा देने का काम करती हैं ।

2.3.1 फायर (1996)

प्रस्तुत फिल्म महिला उपन्यासकार 'इस्मत चुगताई' की कहानी 'लिहाफ' (1942) पर आधारित है । अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त निर्देशिका 'दीपा मेहता' द्वारा बनाई गई यह फिल्म दमित यौन इच्छाओं से ग्रसित देवरानी-जेठानी पर आधारित है । इस फिल्म की कहानी स्वयं दीपा मेहता द्वारा लिखी गई थी । इसका निर्देशन व निर्माण में बॉबी बेदी ने इनका साथ दिया । इस फिल्म को बार्सीलोना अंर्तराष्ट्रीय महिला फिल्म महोत्सव में दर्शकों की पसंदीदा फिल्म का पुरस्कार मिला । कई अंर्तराष्ट्रीय फिल्मी समारोह में भी इस फिल्म को सराहा गया । भारत में कड़े विरोध के बाद भी फिल्म ने अच्छा प्रदर्शन किया व सफल रही ।

राधा और सीता एक ही घर की बहुएँ हैं और दोनों घरेलू ज़िम्मेदारियाँ निभाती हैं । लेकिन वैवाहिक जीवन में यह दोनों खुश नहीं थी । सीता की बांझपन की वजह से उसके पति अशोक आध्यात्मिकता और धर्म गुरुओं की तरफ आसक्त हो जाता है । दूसरी तरफ

जतिन राधा से प्यार करने के बजाय किसी दूसरी लडकी से प्यार करता है । शादी-शुदा जोडों की ज़िदगी में आए इस उतार-चढ़ाव के कारण दोनों यौन इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाती है । जो सुख पती से मिलना था वह न मिलने के कारण दोनों अपने अकेलापन की प्यास को आपस में बुझाती है । राधा और सीता के इस रिश्ते ने पति को चौंका दिया । पति अशोक राधा से बात करते हुए कहता है कि “This is a sin in the eyes of God and Man[11]” इस बात की जवाब देती हुई सीता कहती है “living without desire I’m dead, Without desire there is no point in living, and you know what else, I desire to live, I desire Sita, I desire her warm, her compassion, her body, I desioire to live again[12]” राधा क्रोधित होकर कहती है “If Ashok you want to control your desire take the help of swamiji’s not mine[13]” दोनों के बीच की बहस के दौरान, राधा की साड़ी में आग लग जाती है लेकिन अशोक उसकी परवा न करते हुए कमरे से बाहर चला जाता है । चोट के निशान और आधे जले हुए कपड़ों के साथ राधा आग से बचकर निज़ामुद्दीन दरगाह में सीता से मिलने जाती है जो शांति और सुकून का प्रतीक स्थान है । वहाँ पर फिल्म की THE END होती है ।

2.3.2 गर्लफ्रेंड (2004)

2004 में निकली फिल्म ‘गर्लफ्रेंड’, एक बोल्ड और विवादास्पद फिल्म के रूप में समाज में उभर कर आई है जो प्यार और रिश्तों की पूर्वकल्पित धारणाओं को चुनौती देती है । यह फिल्म ने समलैंगिक संबंधों का साहसिक चित्रण करके समाज के ध्यान आकर्षित किया, जो उस समय भारतीय सिनेमा में काफी दुर्लभ था । स्त्री समलैंगिकता मुददे को केन्द्र में रखकर बनी यह फिल्म असल में समलैंगिक रिश्ते से ज्यादा महिलाओं के बीच की यौन संबंध को दर्शाती है । इसलिए कई विवादास्पद रास्तों से इस फिल्म को गुज़रना पडा ।

फिल्म ‘गर्लफ्रेंड’ तान्या (ईशा कोप्पिकर), सपना (अमृता अरोड़ा) और राहुल (आशीष चौधरी) के बीच रिश्तों की जटिल कहानी है । तान्या और सपना एक दूसरे के जिगरी मित्र

हैं, लेकिन तान्या के मन में सपना के लिए मित्रता से कहीं अधिक गहरी भावनाएँ हैं । वहीं, सपना इस बात से अनजान है और राहुल के प्रति आकर्षित हो जाती है ।

सपना और राहुल के बढ़ते करीबियों से तान्या के अंदर ईर्ष्या और अधिकार की भावना जन्म लेती है । तान्या बार-बार उनके बीच दूरियाँ बढ़ाने की कोशिश करती है, लेकिन हर बार असफल रहती है । एक मौके पर सपना और तान्या के बीच एक अंतरंग क्षण आता है, जो तान्या की चाहत को स्पष्ट करता है । यह सपना के साथ तान्या के संबंध को और उलझा देता है, क्योंकि सपना का झुकाव केवल राहुल की ओर है । इस वजह से तान्या और राहुल के बीच टकराव होता है, जिसमें तान्या, जो एक प्रशिक्षित किक-बॉक्सर है, राहुल पर हावी होने की कोशिश करती है । लेकिन इस संघर्ष में तान्या खिड़की से गिरकर दुर्घटनावश अपनी जान गँवा देती है । अंत में सपना और राहुल एक हो जाते हैं ।

फिल्म समाज में वैकल्पिक यौनिकता और उससे जुड़ी धारणाओं को सामने लाती है । प्रस्तुत फिल्म समलैंगिकता को नकारात्मक और रूढ़िवादी रूप में चित्रित किया गया है, जहाँ इसे केवल शारीरिक आकर्षण और अधिकार की भावना तक सीमित कर दिया गया है ।

2.3.3 मार्गरीटा विद ए स्ट्रॉ (2014)

सार्वभौमिक स्तर पर शारीरिक अपंगत व्यक्तियों का समूह सबसे बड़े अल्पसंख्यक समूहों में से एक है, जो उपेक्षा, अभाव, अलगाव और बहिष्कार का सामना कर रहा है । विकलांगता के कारण कई नुकसान झेलनेवाले इस समूह के बीच कामुकता (सेक्सुआलिटी) एक अपरिहार्य समस्या है । 2014 में प्रदर्शित हिन्दी फिल्म 'मार्गरीटा विद ए स्ट्रॉ' ने इस मुद्दे को नये सिरे से देखने का प्रयास किया है । शोनाली बोस द्वारा निर्देशित यह फिल्म 'प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात' से ग्रसित लड़की की कहानी है जिसका नाम 'लैला' है । व्हीलचेयर

पर जीवन बिताने वाली अक्षम लडकी लैला, अपनी साधारण जिदगी की सीमाओं का अतिक्रमण करके अपने मन और सेक्सुआलिटी को खोजती है । इस फिल्म ने समलिंगी प्रेम व शारीरिक संबंधों को उजागर किया है ।

प्रस्तुत फिल्म की केन्द्रपात्र ‘लैला’ सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित होने के बावजूद जीवन को खुलकर जीने की चाहत रखती है । वह संगीत, रोमांस और लेखन से प्यार करती है । अपनी माँ शुभांगी (रेवती) के सहयोग से, लैला दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ाई करती है और बाद में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में छात्रवृत्ति पाकर आगे बढ़ती है ।

लैला शुरू में पुरुषों की ओर आकर्षित होती है, लेकिन न्यूयॉर्क में, वह खानम (सयानी गुप्ता), एक अंधी समलैंगिक युवती से मिलती है । खानम के साथ उसका रिश्ता उसे अपनी बाइसेक्सुअल पहचान का एहसास कराता है । इस यात्रा में लैला अपने अंदर के असमंजस और संघर्षों का सामना करती है ।

फिल्म का अंत लैला के आत्म-स्वीकृति के साथ होता है । फिल्म जीवन की कठिनाइयों को स्वीकारने और उन्हें सकारात्मकता के साथ जीने का संदेश देती है । यह कहानी विकलांगता, प्यार और यौनिकता को मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है । यह दर्शाती है कि शारीरिक सीमाएँ व्यक्ति की पहचान और इच्छाओं को परिभाषित नहीं करतीं ।

2.3.4 अणफ्रीडम (2014)

2014 में बनी द्विभाषिक (अंग्रेजी-हिन्दी) फिल्म ‘अनफ्रीडम’ को स्त्री समलैंगिकता के विषय पर आधारित एक प्रभावशाली फिल्म के रूप में गिना जा सकता है । राज अमित कुमार के निर्देशन में बनी इस फिल्म में समलैंगिक रुझान स्वीकार करने और साथ रहने का फैसला करने वाली दो लड़कियों की चुनौतियों को दिखाया गया है ।

प्रस्तुत फिल्म दो समानांतर कहानियाँ दिखाई गई हैं । इनमें से एक कहानी भारत की है, जो समलैंगिकता, पितृसत्ता, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संघर्ष को केंद्र में रखती है । भारत की कहानी लीला (प्रीति गुप्ता) पर केंद्रित है, जो अपने रूढ़िवादी परिवार और समाज के बंधनों को तोड़कर अपनी पहचान और प्रेम को अपनाना चाहती है । लीला एक महिला, साखी, से प्रेम करती है और अपने पिता द्वारा तय किए गए विवाह को अस्वीकार कर देती है । यह फैसला उसके परिवार, विशेष रूप से उसके पिता के लिए, पारिवारिक सम्मान पर चोट के समान है । अपनी बेटी की समलैंगिकता को स्वीकार करने में असमर्थ, उसके पिता हिंसा का सहारा लेता है और क्रूर कदम उठाता है ।

कहानी में दिखाया गया है कि लीला अपनी प्रेमिका साखी के अस्वीकार से टूट जाती है । जब साखी उसे अपनाने से इनकार करती है और अपने पुरुष साथी के साथ संबंध रखती है, तो लीला हिंसक हो जाती है और साखी के प्रेमी की हत्या कर देती है । वह साखी से शादी करने की भीख माँगती है, लेकिन यह प्यार और स्वतंत्रता के संघर्ष को और जटिल बना देता है।फिल्म में एक दृश्य में लीला के पिता द्वारा अपने ही बेटी का बलात्कार करवाना, अत्यंत विवादित और आपत्तिजनक है । इसे दिखाने का उद्देश्य लैंगिक स्वतंत्रता को कुचलने और पितृसत्ता की क्रूरता को रेखांकित करना है, लेकिन यह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है । यह कहानी समाज में लैंगिक भेदभाव, पितृसत्ता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की सच्चाई को उजागर करती है ।

2.3.5 एंग्री इंडियन गॉडेसेस (2015)

प्रस्तुत फिल्म 'पान नलिन' द्वारा निर्देशित 2015 की एक अनोखी फिल्म है, जो महिलाओं की दोस्ती, उनके संघर्ष और समाज की सच्चाई को सामने लाती है । कहानी उन भावनाओं और अनुभवों की है जो हर महिला कभी न कभी महसूस करती है । फिल्म में

सारा-जेन डायस, संध्या मृदुल, तनिष्ठा चटर्जी, अनुष्का मनचंदा, अमृत मघेरा, राजश्री देशपांडे और पावलीन गुजराल ने अपनी भूमिकाओं को बखूबी निभाया है ।

कहानी की शुरुआत फ्रीडा (सारा-जेन डायस) द्वारा अपने दोस्तों को गोवा के अपने पुश्तैनी घर बुलाने से होती है । फ्रीडा अपनी शादी की घोषणा करना चाहती है, लेकिन यह नहीं बताती कि वह किससे शादी करने वाली है । दोस्तों में गायिका मधुरिता, गृहिणी पम्मी, व्यवसायी सुरंजना, संघर्षरत अभिनेत्री जोआना, और सामाजिक कार्यकर्ता नरगिस शामिल हैं–वे एक साथ समय बिताना शुरू करते है । धीरे-धीरे, वे अपने जीवन की सच्चाइयों को एक-दूसरे के साथ साझा करते हैं । महिलाएँ खुलकर उन मुद्दों पर बात करती हैं, जो आमतौर पर दबा दिए जाते हैं–जैसे यौन उत्पीड़न, समाज की रूढ़ियाँ, और उनके अपने सपने । तभी फ्रीडा यह स्वीकार करती है कि वह नरगिस से शादी करने वाली है, वो एक लेस्बीयन है । दोस्तों ने उसे बधाई दी और उसकी लैंगिकता को स्वीकार किया ।

शादी से ठीक एक रात पहले, पिकनिक के दौरान, 'जो' के साथ एक भयावह घटना होती है । वह बलात्कार और हत्या का शिकार बनती है । इस घटना से महिलाएँ टूट जाती हैं, लेकिन वे हार मानने के बजाय अपने तरीके से न्याय पाने का फैसला करती हैं । सुरंजना और अन्य महिलाएँ, अपने दर्द और गुस्से को ताकत में बदलकर, उन अपराधियों को सजा देती हैं जिन्होंने 'जो' के साथ यह घिनौना काम किया ।

फिल्म का अंत 'जो' के अंतिम संस्कार के साथ होता है, जहाँ महिलाएँ अपने विचार और दर्द साझा करती हैं । वे अपने साथ हुए अन्याय के खिलाफ खड़ी होती हैं, जबकि पुलिस अधिकारी उन्हें दोषी ठहराने की कोशिश करता है । लेकिन समाज के कुछ लोग उनके समर्थन में खड़े होकर उनके संघर्ष को पहचानते हैं ।

यह फिल्म न केवल महिला सशक्तिकरण की कहानी है, बल्कि यह दिखाती है कि महिलाएँ एक-दूसरे का सहारा बनकर कितनी ताकतवर हो सकती हैं । यह उनके सपनों, उनकी हिम्मत और उनके संघर्षों को सम्मान देती है । यह एक ऐसी कहानी है, जो हर महिला को अपनी ताकत पर विश्वास करने की प्रेरणा देती है ।

2.3.6 एक लडकी को देखा तो ऐसा लगा (2019)

फिल्म 'एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा' 2019 में रिलीज़ हुई एक महत्वपूर्ण हिंदी ड्रामा है, जिसका निर्देशन 'शैली चोपड़ा धर' ने किया है । यह फिल्म प्यार, पहचान और स्वीकृति की कहानी है, जो समलैंगिकता जैसे समाज में कम समझे जाने वाले विषय को सामने लाती है । फिल्म की मुख्य भूमिका में सोनम कपूर, अनिल कपूर, राजकुमार राव और जूही चावला हैं । कहानी स्वीटी चौधरी की है, जो अपनी सच्चाई को परिवार और समाज के सामने स्वीकारने की हिम्मत जुटाती है । यह फिल्म समाज में प्यार की परिभाषा को नए नजरिए से पेश करते हुए सशक्त संदेश देती है ।

कहानी पंजाब के एक छोटे से शहर में रहने वाली स्वीटी के इर्द-गिर्द घूमती है । स्वीटी का परिवार, जिसमें उसके पिता बलबीर चौधरी (अनिल कपूर) भी शामिल हैं, एक पारंपरिक पंजाबी परिवार है । परिवार में हर कोई स्वीटी की शादी की चिंता करता है, लेकिन वह हर बार इसे टालने की कोशिश करती है । इसी दौरान, लेखक और थिएटर कलाकार साहिल मिर्ज़ा (राजकुमार राव) स्वीटी से मिलता है और उसे पसंद करने लगता है ।

कहानी में तब एक बड़ा मोड़ आता है, जब साहिल को पता चलता है कि स्वीटी किसी लड़के से नहीं, बल्कि एक लड़की, कुहु (रेजिना कैसेंड्रा) से प्यार करती है । स्वीटी की यह सच्चाई उसके परिवार और समाज के लिए एक बड़ा झटका साबित होती है ।

फिल्म स्वीटी के उस संघर्ष को दिखाती है, जिसमें वह अपने परिवार और समाज को यह समझाने की कोशिश करती है कि प्यार का कोई जेंडर नहीं होता । साहिल और उसकी थिएटर टीम स्वीटी के इस सफर में उसका साथ देते हैं और एक नाटक के माध्यम से समाज को समलैंगिकता के प्रति जागरूक करने का प्रयास करते हैं । कहानी का अंत स्वीटी के परिवार द्वारा उसके प्यार को स्वीकारने और कुहु के साथ उसके रिश्ते को अपनाने के साथ होता है ।

प्रस्तुत फिल्म केवल समलैंगिकता के विषय को नहीं छूती, बल्कि यह समाज में स्वीकृति, समझ और प्रेम का संदेश भी देती है । इसमें एक लड़की की अपनी पहचान को स्वीकारने और अपने प्यार के लिए लड़ने की यात्रा को बेहद खूबसूरती और गरिमा के साथ प्रस्तुत करती है ।

2.3.7 बधाई दो (2022)

फिल्म 'बधाई दो' 2022 में रिलीज़ हुई एक सामाजिक कॉमेडी-ड्रामा है, जिसका निर्देशन हर्षवर्धन कुलकर्णी ने किया है । यह फिल्म एल जी बी टी क्यु समुदाय की चुनौतियों और समाज में उनके प्रति स्वीकृति की कमी को हल्के-फुल्के और मार्मिक अंदाज़ में प्रस्तुत करती है । राजकुमार राव और भूमि पेडनेकर ने फिल्म में मुख्य भूमिकाएँ निभाई हैं । कहानी में 'लैवेंडर मैरिज' की अनूठी अवधारणा को दर्शाया गया है, जहाँ दो समलैंगिक व्यक्ति समाज और परिवार के दबाव से बचने के लिए शादी करने का नाटक करते हैं ।

फिल्म 'बधाई दो' एक लैवेंडर विवाह की कहानी है, जिसमें शार्दुल ठाकुर (राजकुमार राव), एक समलैंगिक पुलिस अधिकारी, और सुमन सिंह 'सुमी' (भूमि पेडनेकर), एक समलैंगिक पीटी शिक्षक, अपने-अपने दबाव में हैं । शादी करने के लिए परिवारों में समझौता हो जाता है । दोनों समाज और परिवार की उम्मीदों को पूरा करने के लिए एक-

दूसरे से शादी करते हैं, लेकिन अपनी असली पहचान छिपाकर अपनी-अपनी जिंदगी जीते हैं ।

शादी के बाद, शार्दुल और सुमी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाए रखते हुए एक साथ रहते हैं । शार्दुल अपने प्रेमी कबीर से मिलता है, जबकि सुमी रिमझिम (चूम दारंग) के साथ रिश्ता शुरू करती है । सुमी रिमझिम को अपने घर में रहने के लिए आमंत्रित करती है, लेकिन व्यवस्था तब जटिल हो जाती है जब शार्दुल और सुमी के परिवार को उनकी शादी पर संदेह करने लगता है ।

जब शार्दुल की माँ सुमी और रिमझिम को सेक्स करते हुए देखती है, तो वह परिवार में हंगामा मचा देती है । शार्दुल सुमी का समर्थन करता है और अपनी यौन पहचान भी बताता है । अंत में, परिवार शार्दुल और सुमी की सच्चाई को स्वीकार कर लेता है । कहानी सुमी और शार्दुल द्वारा एक बच्चे को गोद लेने के साथ समाप्त होती है । वे एक परिवार के रूप में अपना नया जीवन शुरू करते हैं, सुमी और रिमझिम बच्चे की माँ बन जाती हैं, और शार्दुल खुले दिल से अपनी पहचान को अपनाता है । यह फिल्म शादीशुदा लेस्बियन के संघर्षों, समाज में स्वीकार्यता की आवश्यकता और प्यार व दोस्ती के सही अर्थ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है ।

2.3.8 माजा माँ (2022)

फिल्म 'माजा माँ' लैंगिक पूर्वाग्रहों और आत्म-स्वीकृति की ओर यात्रा की खोज करती है । यह घरेलू महिला पल्लवी के सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करती है, जो अपनी लैंगिक पहचान को उजागर करती है । यह पारिवारिक समर्थन, सांस्कृतिक विविधता और एक आदर्श छवि बनाए रखने के दबाव के विषयों को भी संबोधित करती है । फिल्म सामाजिक मानदंडों को चुनौती देती है और विविध लैंगिक पहचानों के बारे में जागरूकता और स्वीकृति पैदा करने का लक्ष्य रखती है ।

कहानी की मुख्य पात्र पल्लवी पटेल (माधुरी दीक्षित) को एक आदर्श गृहिणी और माँ के रूप में दिखाया गया है । वह अपने बेटे तेजस पटेल और पूरे परिवार की खुशियों के लिए हर संभव प्रयास करती है । पल्लवी का व्यक्तित्व ऐसा है कि समाज और परिवार दोनों ही उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं । तेजस, जो अमेरिका में पला-बढ़ा है, एक अमीर और आधुनिक सोच रखने वाली लड़की ईशा से शादी करने की योजना बनाता है ।

कहानी तब अप्रत्याशित मोड़ लेती है, जब पल्लवी की लैंगिक पहचान सामने आती है । यह खुलासा होता है कि पल्लवी समलैंगिक है । इस सच के उजागर होने से परिवार और खासकर तेजस की जिंदगी में उथल-पुथल मच जाती है । ईशा का परिवार इस सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पाता और शादी के प्रस्ताव पर सवाल उठाने लगता है ।

इसके बाद, कहानी पल्लवी की उस कठिन यात्रा को दर्शाती है, जिसमें वह अपनी सच्चाई को स्वीकारते हुए अपने परिवार और समाज के सामने अपनी जगह बनाने की कोशिश करती है । पल्लवी को न केवल सामाजिक अस्वीकृति का सामना करना पड़ता है, बल्कि अपने बेटे और परिवार के प्यार और स्वीकृति को भी फिर से जीतना होता है ।

फिल्म में दिखाया गया है कि कैसे पल्लवी का आत्मविश्वास और अपने प्रति ईमानदारी उसे इस चुनौतीपूर्ण सफर में ताकत देते हैं । यह फिल्म केवल संघर्ष की कहानी नहीं है, बल्कि परिवार, प्यार और रिश्तों के महत्व को भी खूबसूरती से चित्रित करती है । "माजा माँ" न केवल एक व्यक्तिगत यात्रा है, बल्कि यह समाज में एल जी बी टी क्यु समुदाय के प्रति स्वीकृति और समानता की आवश्यकता का संदेश देती है । फिल्म दिखाती है कि कैसे पारिवारिक रिश्ते और प्यार सामाजिक दबावों से ऊपर उठ सकते हैं । माधुरी दीक्षित ने पल्लवी के किरदार को गहराई और संवेदनशीलता के साथ निभाया है, जिससे दर्शकों को उसकी भावनाओं और संघर्षों से जुड़ने में मदद मिलती है ।

2.4 लेस्बीयन मुद्दे पर बनी हिन्दी फिल्में - सामाजिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर

'सामाजिक' शब्द का प्रयोग मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक संरचना (ढाँचे), संगठन आदि से होता है । समस्या का अभिप्राय ऐसे अवांछनीय एवं अनुचित व्यवहारों अथवा प्रचलनों से है, जो सामाजिक व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न कर देते हैं । अत: सामाजिक संगठन, सामाजिक संरचना या मानवीय सम्बन्धों में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें हम सामाजिक समस्याएँ कहते हैं ।

राब एवं सेल्जनिक (Raab and Selznick) के अनुसार - "यह मानवीय सम्बन्धों की वह समस्या है जो स्वयं समाज को गम्भीर चुनौती देती है अथवा अनेक लोगों की महत्त्वपूर्ण आकांक्षाओं में बाधा पैदा करती है"।[14]

समाज की परिस्थितियाँ जीवन के अनेक पक्षों से जुड़ी होती हैं । यही परिवार, विवाह, नारी पुरुष सम्बन्ध, जाति व्यवस्था, राष्ट्रीयता जैसे अनेक मूल्यों और स्थितियों को आकार देती है । भारतीय स्वतंत्रता ने सामाजिक जीवन, परिवेश, संस्कृति और मूल्यों को प्रभावित किया । आज का भारतीय समाज एक विकट सामाजिक मोड़ से गुज़र रहा है । युग के अनुरूप समाज व्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन चलता रहता है । इस सम्बन्ध में श्री के डेवीस का मत है- "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते है जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज के ढाँचे और प्रकार्यों में घटित होते हैं"।[15] स्वतंत्रता के पश्चात् जहाँ एक ओर भारत ने प्रगति की ओर कदम बढ़ाया, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के सामने अनेक समस्याएँ प्रस्तुत हो गई , जिसमें में प्रमुख है समलैंगिकता ।

भारत सहित कई समाजों में, समलैंगिकता को अक्सर कलंकित और हाशिए पर रखा है, भारतीय समाज में एल जी बी टी क्यु समुदाय के मुद्दों पर आधारित फिल्में हाल के वर्षों में अधिक जागरूकता और चर्चा का विषय बनी हैं । लेस्बियन मुद्दों पर आधारित हिंदी फिल्मों ने समाज में मौजूद पूर्वाग्रहों, संघर्षों और स्वीकृति की कहानियों को उजागर किया

है । यहाँ कुछ प्रमुख हिंदी फिल्में हैं जो लेस्बियन संबंधों और समाजिक, वैवाहिक और पारिवारिक परिप्रेक्ष्य को दर्शाती हैं ।

2.4.1 सामाजिक मुद्दे

समलैंगिकता एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है, जिसे भारतीय समाज में कई बार विवाद और चर्चा का विषय बनाया गया है । हिंदी फिल्मों ने इस मुद्दे को विभिन्न तरीकों से प्रस्तुत किया है, जिससे समाज में समलैंगिकता के प्रति जागरूकता बढ़ी है । समलैंगिक रिश्तों के विषय पर आधारित आठ हिंदी फ़िल्मों का चयन किया गया है, जिसमें समलैंगिक पात्रों द्वारा सामना किए जाने वाले संघर्ष एवं समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है ।

2.4.1.1 वैवाहिक जीवन में यौन संबध

विवाह मानवीय समाज का एक अनिवार्य संस्कार है । यह मानव समाज की सामाजिक संस्था है । मनुष्य की यौन क्रियाओं को सामाजिक एवं न्यायिक रूप प्रदान करने के लिए आदि काल में इस संस्था की स्थापना की गई । यौन संबध वैवाहिक जीवन का भौतिक आधार है । फिल्म 'फायर' में सीता और राधा अपने पति से अपने हिस्से का प्यार चाहती है और माँगती है । लेकिन दोनों के पतियों ने उन्हें न समय देती है न ही उन्हें प्यार देता है । "इच्छा का क्या मतलब है, अगर उसे दबाकर रखा जाए?"[16] । यह संवाद राधा (शबाना आज़मी) के मन की गहरी पीड़ा और अधूरे जीवन को दर्शाता है । राधा अपने पति अशोक (कुलभूषण खरबंदा) के साथ एक ऐसी शादी में बंधी हुई है, जिसमें न तो भावनात्मक जुड़ाव है और न ही शारीरिक निकटता । अशोक अपने धार्मिक विश्वासों और आध्यात्मिक आदर्शों के कारण अपनी पत्नी के साथ यौन संबंध बनाने से इनकार करता है, जिससे राधा की इच्छाएँ और भावनाएँ लगातार दबाई जाती हैं । इस संवाद के माध्यम से राधा के भीतर का संघर्ष उजागर होता है, जो न केवल उसकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की

अवहेलना को दिखाता है, बल्कि उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना भी करता है जहाँ महिलाओं की इच्छाओं और जरूरतों को महत्वहीन मानती है ।

2.4.1.2 विवाह के पश्चात अवैध संबंध

विवाहेतर यौन संबंध का तात्पर्य ऐसे शारीरिक और भावनात्मक संबंधों से है जो शादी के दायरे से बाहर स्थापित होते हैं । ये संबंध उन व्यक्तियों के बीच होते हैं, जो पहले से किसी और के साथ वैवाहिक बंधन में बंधे होते हैं । शादी के बाद पती पत्नी के मध्य में होने वाली यौन संबधों को ही स्वीकृति है । समाज में दांपत्य संबधों के प्रति स्त्री जितनी आस्थावान, ईमानदार नजर आती है उतना पुरुष नहीं । विवाह पूर्व एवं विवाह पश्चात पत्नी को छोडकर अन्यत्र यौन संबध या प्रेम को अवैध मानता है । फिल्म 'फायर' में जतिन, पत्नी से प्यार एवं सहयोग देने से बदले वह दूसरी लडकी के साथ संबध रखता है ।

2.4.1.3 पत्नी की सहमति के बिना पति का यौन संबंध

पत्नी की सहमति के बिना पति द्वारा यौन संबंध एक संवेदनशील और जटिल मुद्दा है, जो न केवल कानूनी बल्कि सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है । भारतीय कानून में विवाह के दौरान सहमति का महत्व स्पष्ट नहीं है, जिससे कई विवाद उत्पन्न होते हैं । फिल्म में 'माजा माँ' पल्लवी सीक्रट लेस्बीयन होने के कारण वह परिवार व समाज के लिए एक विषमलैंगिक शादी में प्रवेश करती है, और उसकी इजाज़त के बिना पति उसके साथ यौन क्रिया करता है । क्वीर समुदाय का हिस्सा होने का खुलासा करने के बाद पति और पल्लवी के बीच की बहस होती है । मध्य संवाद में पल्लवी कहती है कि "कभी भी मुझसे संबध बनाने से पहले आप मुझसे पूछा कि मेरी इच्छा क्या है क्या यही पति धरम है तब आप मेरी इच्छा जानना जरूरी नहीं समझा तो आज भी आपको कोई हक नहीं है"[17]।

2.4.1.4 विकलांगता और शिक्षा से जुडे संघर्ष

विकलांगता केवल शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक अक्षमता नहीं है, बल्कि यह समाज की सोच, दृष्टिकोण और बुनियादी ढांचे की सीमाओं का परिणाम भी है। विकलांग व्यक्तियों को लंबे समय से भेदभाव, असमानता और उपेक्षा का सामना करना पड़ा है, जिससे शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य सेवाओं और सार्वजनिक सुविधाओं तक उनकी पहुंच में अनेक बाधाएं उत्पन्न होती हैं । व्हीलचेयर पर जीवन बिताने वाली अक्षम लडकी लैला, अपनी साधारण जिदगी की सीमाओं का अतिक्रमण करके अपने मन और सेक्सुआलिटी को खोजती है । लैला अपने शैक्षिक और व्यक्तिगत लक्ष्यों को हासिल करने के लिए कई मुश्किलें को पार करती हैं जैसे वे विकलांग होते हुए भी अपनी पढ़ाई के लिए विदेश जाती है, और परिवार के सदस्य भी उसे शारीरिक रूप से अक्षम नही मानते है । लेकिन, समाज के नज़र में लैला एक अक्षम लडकी ही है । लैला दिल्ली विश्वविद्यालय की एक म्यूज़िक बान्ड का हिस्सा बनके अपनी ग्रूप के लिए कोम्पोसिशन और लिरिक्स लिखती थी । जब उसकी बैंड प्रतियोगिता में जीत जाती है तो महिला उद्घोषक कहती है कि “हमें जब पता चला कि इसकी कोम्पोसिशन और लिरिक्स एक डिज़ैब्लड म्यूजिशन ने लिखा है, तो हमें इस कॉलज को यह अवार्ड देना ही पडा”[18]। यह संवाद समाज के नज़रिया को व्यक्त करता है ।

प्रस्तुत फिल्म का मुख्य संदेश यह है कि शारीरिक तौर पर विकलांग व्यक्ति के मन में वही भावनाएँ होती है जो एक स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति के मन में होती है । व्हीलचेयर किसी की जिंदगी नहीं बदल सकती । वह भी सामान्य जीवन जीने की हकदार है ।

2.4.1.5 परिवार के लिए अपनी पहचान और जिंदगी भर समझौता

समलैंगिक (लेस्बियन) महिलाओं के लिए अपनी पहचान को स्वीकार करना और उसे समाज तथा परिवार के सामने प्रकट करना एक अत्यंत चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, विशेषकर

भारतीय समाज के संदर्भ में। परिवार, जो भारतीय जीवन में सामाजिक और भावनात्मक संरचना का केंद्र है, अक्सर रूढ़िवादी मूल्यों और पारंपरिक मान्यताओं से संचालित होता है । ऐसे में, परिवार के लिए अपनी पहचान को छुपाना या उससे समझौता करना समलैंगिक महिलाओं के लिए एक दर्दनाक लेकिन सामान्य स्थिति बन जाती है । फिल्म 'एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा' में पूर्वाग्रह और बहिष्कार के डर के कारण स्वीटी अपनी कामुकता और कुहू के साथ अपने रिश्ते को घरवालों से छिपाती है । सामाजिक आदर्शों पर चलने वाले घर में रहने के कारण वह अपनी कामुकता की सच्चाई सबसे गुप्त करती है । वह अपनी पूरी ज़िंदगी इस डर से गुज़रती है कि 'समाज क्या कहेगें'[19] । स्वीटी को पता था कि उसका परिवार कितनी परम्परावादी है । इसलिए बचपन से ही अपने दिल की हर बात वो डायरी में छुपाती थी । बचपन में स्कूल के बच्चे भी उसके साथ बात करने के लिए तक तैयार नहीं थे, और अजीब तरीके से पेश आते थे जो उसके लिए असहनीय था । किसी से अपने दिल की बात न बोल पाने के कारण स्वीटी अक्सर अकेलापन और गुढ़न महसूस करती थी ।

2.4.1.6 परिवार और समाज के लिए विवाह

भारत में विवाह एक प्रथा है । यह समाज का निर्माण करने वाली सबसे छोटी इकाई परिवार का मूल है । एक महिला का मुख्य कर्तव्य शादी करना और परिवार के सम्मान को बनाए रखना है । सामाजिक मानदंड पल्लवी पर अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और खुशी की परवाह किए बिना, एक आदर्श विवाह और पारिवारिक जीवन की उपस्थिति बनाए रखने के लिए काफी दबाव डालते हैं । इन सामाजिक और पारिवारिक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए, पल्लवी अपनी व्यक्तिगत खुशी और व्यक्तित्व का त्याग करती है । वह एक ऐसे विवाह में प्रवेश करती है और बनाए रखती है जो पारंपरिक मानदंडों के अनुरूप है, लेकिन उसे भावनात्मक या व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट नहीं कर सकता है । पल्लवी की सामाजिक

अपेक्षाओं का पालन उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है क्योंकि उसे अपने परिवार और समाज द्वारा बनाए गए ढांचे में फिट होने के लिए अपने सच्चे स्व को दबाना पड़ता है। फिल्म में पल्लवी के जीवन के इन संघर्षों को अंत तक दिखाया गया है ।

2.4.2 मनोवैज्ञानिक मुद्दे

मनोविज्ञान अन्य विज्ञानों की तुलना में अपेक्षाकृत एक नवीन विधा है, जो आधुनिक अनुसंधानों और गहन अध्ययन के माध्यम से निरंतर समृद्ध और विकसित होती रही है । यह क्षेत्र मुख्यतः मानव क्रियाओं और उनके पीछे छिपे कारणों को समझने का प्रयास करती है । मनोविज्ञान की परिभाषाएँ मानव व्यवहार की व्याख्या के विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करती हैं, जो इसे एक बहुआयामी और व्यापक विषय बनाती हैं । आरिस्टोटल के अनुसार, "मनोविज्ञान आत्मा और मन की प्रकृति को समझने का गहन और व्यवस्थित प्रयास है"[17] इसके साथ ही, मनोवैज्ञानिक मुद्दे जैसे मानसिक स्वास्थ्य, तनाव, और आत्मसम्मान की समस्याएँ समाज के हर स्तर को प्रभावित करती हैं । मनोवैज्ञानिक मुद्दे (Psychological Issues) वे समस्या या स्थिति होती हैं जो किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं । ये मुद्दे व्यक्ति के सोचने, महसूस करने और व्यवहार करने के तरीके को प्रभावित कर सकते हैं । ये समस्याएँ व्यक्ति की सोच, भावनाओं और व्यवहार पर गहरा प्रभाव डालती हैं, जिससे उनका सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन जटिल और संघर्षपूर्ण हो सकता है । यहाँ लेस्बीयन फिल्मों में चित्रित निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक मुद्दों का उल्लेख किया गया है:

2.4.2.1 पारिवारिक अपेक्षाओं के बोझ तले दबती यौन पहचान

भारतीय समाज में पारिवारिक अपेक्षाएँ और दबाव एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो अक्सर दंपतियों के लिए बच्चे पैदा करने, वित्तीय स्थिरता और पारिवारिक दायित्वों

जैसे मुद्दों को लेकर तनाव पैदा करते हैं । फिल्म 'फायर' में सीता और राधा के किरदार इन चुनौतियों का उदाहरण हैं । उनके अनुभव सामाजिक मानदंडों को पूरा करने में व्यक्तियों द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाइयों और इन दबावों के कारण उनके रिश्तों पर पड़ने वाले भावनात्मक प्रभाव को उजागर करते हैं ।

राधा एक पारंपरिक भारतीय महिला के रूप में अपनी जिम्मेदारियों को निभाती है, लेकिन उसे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और भावनाओं को दबाना पड़ता है । राधा का जीवन उसके परिवार की सेवा और देखभाल में बंधा हुआ है, जिससे वह अपने लिए समय नहीं निकाल पाती । सीता के पति उसे भावनात्मक और शारीरिक रूप से उपेक्षित करते हैं, जिससे वह अकेलापन और उदासी महसूस करती है । इस उपेक्षा के कारण वह अपने आत्म-सम्मान और अस्तित्व पर सवाल उठाने लगती है ।

फिल्म 'बधाई दो' में सुमी (भूमि पेडनेकर), एक समलैंगिक महिला, पारिवारिक दबाव और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच फंसी हुई है। अपनी पहचान छुपाने और समाज के सवालों से बचने के लिए वह शार्दुल (राजकुमार राव), जो स्वयं एक समलैंगिक पुरुष है, के साथ एक लैवेंडर विवाह करती है । विवाह के बाद भी, सुमी पर परिवार द्वारा बच्चे पैदा करने का दबाव डाला जाता है । यह आग्रह उसकी यौन पहचान और जीवन के प्रति उसकी इच्छाओं को पूरी तरह से अनदेखा करता है । परिवार का यह रवैया सुमी के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालता है, क्योंकि वह अपने अस्तित्व को स्वीकारने और जीने की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही होती है । बच्चे पैदा करने के लिए किए गए इस आग्रह से सुमी घुटन और तनाव का अनुभव करती है, जिससे उसकी भावनात्मक स्थिति और अधिक जटिल हो जाती है ।

2.4.2.2 आत्म-स्वीकृति का संघर्ष और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

जब कोई व्यक्ति अपनी समलैंगिकता को समझने और स्वीकारने की प्रक्रिया से गुजरता है, तो यह एक गहरी और जटिल यात्रा बन जाती है, जो उसके मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाल सकती है । आत्म-स्वीकृति के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा 'आंतरिक होमोफोबिया' होती है, जो अक्सर व्यक्ति में शर्म, अपराधबोध और आत्म-घृणा की भावनाओं को जन्म देती है । ये भावनाएँ आत्म-सम्मान को कमजोर करती हैं और मानसिक संघर्ष को बढ़ा देती हैं । इसके अलावा, परिवार, दोस्तों और समाज से अस्वीकृति का डर अत्यधिक तनाव और चिंता का कारण बनता है । व्यक्ति लगातार इस बात को लेकर चिंतित रहता है कि अगर उसने अपनी यौन पहचान को सार्वजनिक किया, तो उसके प्रियजन कैसे प्रतिक्रिया देंगे ।

फिल्म 'गर्लफ्रेंड' में तान्या का किरदार इस मानसिक संघर्ष का आदर्श उदाहरण है । तान्या, जो अपने समलैंगिक होने के वजह से लगातार अस्वीकृति और तिरस्कार के डर में जीती है । यह डर उसकी मानसिक शांति को प्रभावित करता है और उसे आत्म-स्वीकृति की ओर बढ़ने से रोकता है । यह कहानी समलैंगिकता से जुड़ी सामाजिक और व्यक्तिगत चुनौतियों को उजागर करती है, जो मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती हैं । तान्या अपने अकेलेपन और आत्म-संदेह से भी जूझती है, क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि कोई उसे समझ नहीं पाता या स्वीकार नहीं करता । उसकी भावनाओं और इच्छाओं को नकारा जाना उसे भीतर से तोड़ देता है, जिससे वह और भी अधिक असुरक्षित और अस्थिर हो जाती है ।

खुद की सेक्शुआलिटी को स्वीकृत करना एक गहरी और जटिल प्रक्रिया है, जो व्यक्तिगत, सामाजिक और मानसिक स्तर पर कई चुनौतियाँ प्रस्तुत करती है । क्वीर समुदाय के लिए यह समस्या और भी कठिन हो जाती है, क्योंकि उन्हें अपनी पहचान को

स्वीकारने के साथ-साथ समाज और परिवार से जुड़े रूढ़िवादी दृष्टिकोणों का भी सामना करना पड़ता है। पारंपरिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक वर्जनाएँ व्यक्ति को अपनी सच्चाई को स्वीकारने से रोकती हैं, जिससे शर्म, अपराधबोध, और आत्म-संदेह की भावना विकसित होती है। समाज के डर और परिवार की अस्वीकृति का भय कई बार व्यक्ति को अपनी पहचान छिपाने और खुद से ही इनकार करने के लिए मजबूर करता है । फिल्म 'माजा माँ' भारत में महिलाओं, खास तौर पर समलैंगिक महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों की मार्मिक खोज है, जिसमें उनकी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को निर्धारित करने वाली सामाजिक अपेक्षाओं को दर्शाया गया है । यह विवाह करने और पारंपरिक पारिवारिक संरचनाओं के अनुरूप ढलने के दबाव को उजागर करती है, जिसके कारण अक्सर महिलाएं अपनी वास्तविक पहचान से समझौता कर लेती हैं । यह दबाव और आत्मस्वीकृति की कमी न केवल उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि मनोवैज्ञानिक अस्थिरता और संघर्ष को भी जन्म देता है ।

2.4.2.3 मानसिक एवं शारीरिक प्रताड़ना में फँसी युगल

मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना किसी व्यक्ति को भावनात्मक या शारीरिक रूप से आहत करने का कृत्य है, जो उसकी मानसिक शांति और शारीरिक सुरक्षा को नुकसान पहुँचाता है। मानसिक प्रताड़ना में ताने, अपमान, धमकियाँ, और भावनात्मक उपेक्षा शामिल होती है, जो आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाती है। वहीं, शारीरिक प्रताड़ना में हिंसा, बल का प्रयोग, और चोट पहुँचाने जैसे कार्य शामिल होते हैं, जो शारीरिक पीड़ा और मानसिक आघात का कारण बनते हैं। दोनों प्रकार की प्रताड़ना व्यक्ति के जीवन पर गहरा नकारात्मक प्रभाव डालती है ।

2015 में निकली फिल्म 'अणफ्रीडम' में सखी और लीला को भी अपने रिशते निभाने की अवसर प्राप्त नहीं हुआ और तो और दोनों के ज़िदगी में परिवार एवं समाज का

शोषण रहा । पुलीस थाने में पिता अपनी बेटी को नैतिक दवाब देते हुए कहता है कि “कल तक में सड़क पर सीने ऊपर करके चलता था, सर मेरे आसमाल को छूता था मेरा, आज में यहाँ नंगा.. सबके सामने, you just did not run away with that slut, नंगा कर दिया तूने मुझे और अपनी माँ को,सारे समाज के सामने, दाग लग गया है चेहरे पे.. तू.. है वो दाग, मेरी सारी ज़िदगी सारी इज्जत सब कालिक हो गया । सब दाग हो गया । अभी तुम कही और होते ने काट देता में I am offering forgiveness that u will not never see this whore again[20]” यही से हमें साफ पता चलता है कि पिता अपनी बेटी की खुशी नहीं बल्की समाज में उनकी हैसियत को अहमीयत मानती है । पिता अपने ही सामने अपने ही बेटी की बलात्कार दूसरों से करवाता है । नागरीक के रक्षा करने वाले पुलिस भी उनका साथ देता है ।

2.4.2.4 समाज में स्वीकृति: समानता का संघर्ष

फिल्म ‘अनफ्रीडम’ में केन्द्रपात्र सखी के द्वारा एक ऐसे संघर्ष की कहानी बयां करता है, जहाँ स्वतंत्रता केवल एक इच्छा नहीं, बल्कि अस्तित्व की गहरी पुकार बन जाती है। समाज और परिवार की रूढ़ियों के बीच सखी अपनी पहचान के लिए जूझती है, लेकिन हर कदम पर उसे मानसिक और भावनात्मक पीड़ा का सामना करना पड़ता है । बलात्कार जैसी अमानवीय घटना ने न केवल उसके शरीर को, बल्कि उसकी आत्मा को भी गहराई से आहत किया । यह घटना उसके आत्म-सम्मान को छीन लेती है, और उसके भीतर एक असहायता का भाव पैदा करती है । सखी अपने यौन अभिविन्यास को स्वीकारने की कोशिश करती है, लेकिन समाज की कठोर निगाहें और परिवार के क्रूर निर्णय उसे अपराधबोध और शर्मिंदगी के गहरे दलदल में धकेल देते हैं । अकेलेपन और बहिष्कार के डर से वह खुद को सामाजिक दायरे से बाहर पाती है, जहाँ उसकी हर कोशिश निरर्थक लगने लगती है। हर मोड़ पर वह आंतरिक संघर्ष से जूझती है–एक ओर अपनी इच्छाओं और पहचान की पुकार, और दूसरी ओर समाज की पारंपरिक अपेक्षाओं का भारी बोझ ।

अपने अस्तित्व की तलाश की यात्रा सखी के लिए चुनौतियों से भरी थी, परिवार और समुदाय से हिंसा और बहिष्कार का खतरा भी इस यात्रा में उसके साथ रहे । यौन अभिविन्यास के आधार पर भेदभाव और उत्पीड़न का सामना, सामाजिक अपेक्षाओं के साथ अपनी इच्छाओं को समेटने का उनका संघर्ष आदि सखी के माध्यम से फिल्म में निर्देशक ने व्यक्त करने की कोशिश की है ।

2.4.2.5 अकेलापन

अकेलापन वर्तमान समाज का एक अभिशाप बन गया है आदमी- आदमी के बीच का अजनबीपन और परायापन ही वस्तुतः अकेलापन है । 'एक लडकी को देखा तो ऐसा लगा' फिल्म में स्वीटी को अपनी सेक्शुआलीटी के बारे में बचपन से ही ज्ञात था । दोस्त न होने के कारण वह उस जगह उसकी डायरी को दिया । दिल की हर बात वो डायरी में छुपाती थी एक दिन डायरी दोस्तों ने देखा जिसमें उसकी अस्तित्व की पहचान भी छिपी थी । बाद में दोस्त लोग उसकी सच्चाई को जानकर उससे अलग होकर चली गई, धीरे उसे समझ में आया कि में बाकी लोगों के साथ वह फिट नहीं होती । अकेलापन में स्वीटी को गुढ़न महसूस होने लगी । अपने आपको बोल दिया था कि "मुझे पूरी लाईफ अकेली ही रहना है[21]"।

2.4.2.6 परिवार और आत्म-पहचान के बीच स्वीकृति की जद्दोजहद

पिता द्वारा स्वीकार न किया जाना न केवल बच्चे के लिए मानसिक और भावनात्मक संघर्ष का कारण बनता है, बल्कि माता-पिता, विशेषकर पिता पर भी बहुत दबाव डालता है। भारतीय समाज के पारंपरिक मूल्यों और सामाजिक अपेक्षाओं के कारण, पिता को 'पारिवारिक सम्मान' और सामाजिक मान्यता बनाए रखने का बोझ है । यह दबाव पिताओं को अपने बच्चे की पहचान और यौन रुझान को समझने और स्वीकार करने से रोकता है। साथ ही, बच्चे अस्वीकृति से डरते हैं और लगातार समर्थन मांगते हैं, जो उनके

मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है । यह दोहरा संघर्ष परिवार के भीतर तनाव, संचार अंतराल और भावनात्मक दूरी बढ़ाता है। पिता और बच्चों दोनों पर यह दबाव उन्हें अपनी जरूरतों और भावनाओं को खुलकर व्यक्त करने से रोकता है, जो उनकी मानसिक शांति और रिश्तों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

फिल्म 'एक लडकी को देखा तो ऐसा लगा', ' अणफ्रीडम', 'बधाई दो' आदि फिल्मों ने इस समस्याओं को व्यक्त किया है । फिल्म 'एक लडकी को देखा तो ऐसा लगा' में स्वीटी की पिता बलबीर एक रूढ़िवादी व्यक्ति है जो अपनी बेटी की सेक्शुआलिटी को स्वीकार करने के लिए संघर्ष करता है । जैसे ही उसे सच्चाई का पता चलता है, वह सदमे, क्रोध और इनकार सहित कई तरह की भावनाओं का अनुभव करता है । और वह स्वीटी से कहता है कि "सबके सामने मुझे शर्मिन्दा करना है ना तुम्हें"[22] दूसरी ओर 'बधाई दो' में सुमी की यौनिकता परिवार के सामने आने के बाद सुमी के भाई ने कहा, "मैं अपने दोस्तों को क्या बताऊंगा कि मेरी बहन लेस्बियन है"[14] यह बात सुनकर उसकी मां कही है, "तुम मर क्यों नहीं गयीं । इससे अच्छा तो यह होता कि तुम मर ही जाते"[15] पिता चौकित होकर सिर्फ इतना कहा, "मेरे घर ही क्यों?"[16] और बुरी तरह रोने लगी । सुमी के पति शार्दुल (राजकुमार राव) सारे संघर्षों को साहसपूर्वक सामना करके कहा, "समलैंगिक जानवर नहीं हैं, वे भी सामान्य लोगों की तरह इंसान हैं। यह कोई बीमारी भी नहीं है । यह एक प्राकृतिक चीज़ है जो मन के अंदर से आती है । इस पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। हम जो हैं वही होना चाहिए"[17]। चर्चित फिल्मों के पारिवारिक स्वीकृति तो होता ही है लेकिन 'अणफ्रीडम' में पिता उनके सामने बेटी की बलात्कार पुलीस से करवाते है ।

2.4.2.7 स्वतंत्रता की खोज और समाज की सोच बदलने का संघर्ष

समलैंगिकता के प्रति समाज की सोच को बदलने की क्षमता न केवल जागरूकता और शिक्षा पर आधारित है, बल्कि सहानुभूति और स्वीकार्यता के विकास पर भी निर्भर

करती है। एल जी बी टी क्यु समुदाय को लेकर मौजूद रूढ़िवादिता और पूर्वाग्रह तब टूट सकते हैं जब समाज यह समझे कि यौन पहचान जैविक और प्राकृतिक है, न कि कोई 'चुनाव' या 'पश्चिमी प्रभाव' । फिल्म 'एक लडकी को देखा तो ऐसा लगा' में, जब स्वीटी का सच सबके सामने आता है तो पिता उसे इनकार करती है, तब स्वीटी कहती है "मैं आपकी खिलाफ कहीं नहीं जाती, पर यह बात हर बच्ची की है जिसने अपनी पूरी जिदगी अकेली बिताई है, जिसे लगा उसे समझना वाले कोई नहीं है, जो अपना पूरा बचपन यह सोचकर रहा कि वो ऐसा क्या तरकीब लगाए, जिसे लोगों से अक्सप्ट करें"[23]। फिल्म के अंतिम क्षणों में एक नाटक के माध्यम से स्वीटी की कहानी को लोगों तक पहुँचाने की कोशिश किया है । एक ओर, जैसे ही नाटक शुरू होता है, कुछ लोग नाटक का घटनाओं और प्रसंगों को समझने में असमर्थ होकर उसे बीच में ही छोड़कर चले जाते हैं, तो दूसरी ओर, लोग गहराई से उसे समझने और उसकी भावनाओं को आत्मसात करने का प्रयास करते हैं ।

2.4.3 पितृसत्तात्मक मुद्दे

पितृसत्तात्मक समाज ने सदियों से महिलाओं की यौनिकता और उनके अस्तित्व को अपने नियंत्रण में रखा है, लेकिन लेस्बियन महिलाओं के संदर्भ में यह नियंत्रण और भी कठोर हो जाता है । उनकी पहचान को सामाजिक और सांस्कृतिक रूढ़ियों के बीच अपनी जगह बनानी पड़ती है, जहां उन्हें बार-बार चुनौतियों का सामना करना पड़ता है । यह व्यवस्था न केवल उनके स्वतंत्र अस्तित्व को बाधित करती है, बल्कि उनके मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव डालती है । पितृसत्ता, अपने वर्चस्व को बनाए रखने के प्रयास में, महिलाओं और एल जी बी टी समुदाय के अधिकारों को अक्सर नजरअंदाज किया है । फिल्मों में समलैंगिकता को दर्शाने के दौरान, यह पितृसत्तात्मक सोच कई बार नकारात्मक या हास्यपूर्ण तरीके से उभरा गया है । 'फायर', 'गर्लफ्रेंड', 'मैन्स नोट अलाउड', 'अणफ्रीडम', 'एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा', 'बधाई

दो', 'माजा माँ' कुछ ऐसी फिल्में है जिनमें पुरुष अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए तिलमिलाता दिखाया गया है ।

2.4.3.1 पितृसत्तात्मक समाज के प्रतीक - फिल्म के किरदारों के माध्यम से

पितृसत्तात्मक मानसिकता यह मानती है कि महिलाओं का स्थान केवल घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित होना चाहिए । फिल्म 'फायर' में अशोक को पितृसत्तात्मक समाज के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब राधा और अशोक के बीच बहस होती है, तो अशोक राधा से कहता है, "तुम कैसी पत्नी हो, मेरी पैर छूकर माफी मांगने की बजाय बहस कर रही हो"[24]। यह संवाद पितृसत्तात्मक मानसिकता को स्पष्ट रूप से उजागर करता है, जहां पुरुष अपने हितों को प्राथमिकता देते हैं और महिलाओं को केवल पारिवारिक दायित्वों तक सीमित कर दिया जाता है । फिल्म यह दिखाती है कि पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के विरोध को सहन करना मुश्किल है, क्योंकि पितृसत्ता ने सदियों से महिलाओं को पुरुषों की इच्छाओं और कामनाओं के अधीन बनाए रखा है । फिल्म में इस मानसिकता की जड़ों को सिरे से चुनौती दी गई है । राधा और सीता का अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए खड़ा होना पितृसत्ता के खिलाफ एक सशक्त विरोध का प्रतीक है ।

2.4.3.2 स्वतंत्र निर्णय लेने में इनकार

स्वतंत्र निर्णय लेना हर व्यक्ति का अधिकार और उसकी व्यक्तितत्व का महत्वपूर्ण हिस्सा है । यह न केवल किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रतीक है, बल्कि उसके आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता को भी परिभाषित करता है । फिल्म 'अणफ्रीडम' में सखी को अपनी जिदगी जीने का अवसर नही मिला है, क्यों कि भारत में स्त्री को हमेशा पुरुष के तुलने में नीचे का स्थान दिया है । अपने लिए निर्णय लेने का स्वंतंत्रता भी सखी को नहीं मिला, उसकी सहमति के बिना उसके साथ बलात्कार होता है । फिल्म स्वतंत्रता, की माँग

करती है । फिल्म में दी गई इस सामाजिक, पारंपरिक व्यवहार की संदेश वाकई अच्छा है लेकिन जिस तरह से इसे दिखाया गया है वह बेहद हैरान करने वाला है ।

2.4.3.3 पितृसत्ता और जकड़े किरदार

प्राचीन समय से लेकर वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाए तो भारत एक पुरुष प्रधान समाज रहा है । धर्म, नैतिकता, संस्कृति, रूढिवादी परंपरा, समाजिक मूल्यों, जैसे संरचना से स्त्री पर दवाब डालकर पुरुष अपने प्रभुत्व दिखाता है । इस फिल्म में स्वीटी की भाई वीर पितृसत्तात्मक समाज का प्रतीक है । वह अपने परिवार की इज्जत बचाने के लिए और समाज में असका प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए वह स्वीटी को अपनी पहचान की कोठरी से बाहर नहीं आने देता । स्वीटी घर से भागकर अपनी प्रेमिका कुहु से मिलने के लिए निकलती है । यह बात सुनकर वीर उसको बताती है "आज के बाद तुम इस घर से बाहर पैर नहीं रखने देता । अगर डाडी को सब कुछ बताऊ तो सोच उनके ऊपर क्या बीतेगी, अगर किसी को पता चला न, कितनी बदनामी होगी हमारी, सबने तू तू करनी है, तेरे पे भी, हमारे पे भी"[26]। स्वीटी की लैंगिकता पूरा परिवार से छिपाकर उसकी शादी किसी लडके से कराने की कोशिश करती है । फिल्म के अंत तक वह स्वीटी को अपनाने के लिए तैयार नहीं था । उस केलिए अपनी बहन से ज्यादा समाज में उसका इज्जत ही महत्व था फिल्म के अंतिम क्षण में वीर पूरे परिवार के सामने स्वीटी की सेक्शुआलिटी का पर्दा उठाती है और कहता है "परिवार की बेजती करवानी है क्या तुम्हें, लोग क्या बोलेगा, बिमारी है और 14 सालों से जानती हुँ"[27]।

2.4.4 राजनैतिक,धार्मिक और सांस्कृतिक मुद्दे

भारतीय संस्कृति में धर्म और परंपराओं का गहरा संबंध है, और यह सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का मूलाधार रहा है । समाज को सुव्यवस्थित रखने में धर्म ने हमेशा एक प्रमुख भूमिका निभाई है । स्वतंत्रता के बाद भारत में हुए सामाजिक और

सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ-साथ धर्म के स्वरूप में भी बदलाव देखने को मिला है। वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक शिक्षा ने धार्मिक मूल्यों और ईश्वर संबंधी धारणाओं में परिवर्तन किया है, जिससे परंपरागत आस्थाओं के स्थान पर विज्ञान से प्रेरित विचारधाराओं और नास्तिकता का उदय हुआ है। इसी संदर्भ में, समलैंगिकता को लेकर भी दृष्टिकोण बदला है । परंपरागत धार्मिक व्याख्याओं में समलैंगिकता को 'प्राकृतिक' नहीं माना गया, और इसे पाप या सामाजिक बुराई के रूप में देखा गया । आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानवाधिकारों पर बढ़ते संवाद ने समलैंगिकता को जैविक और प्राकृतिक मान्यता दी है । समलैंगिकता भारत में लंबे समय तक न केवल एक सामाजिक वर्जना, बल्कि एक संवेदनशील राजनीतिक मुद्दा भी बनी रही है।

2.4.4.1 रूढ़िगत विश्वासों में फंसी लेस्बीयन युगल

लेस्बियन युगल को पारंपरिक समाज की रूढ़िवादी सोच और मान्यताओं के कारण अपनी पहचान और रिश्ते को स्वीकार करवाने में कठिनाई होती है । परिवार, धर्म, और सामाजिक दबाव उनके संबंधों को अस्वीकार करते हुए उन्हें छिपकर जीने पर मजबूर कर देते हैं । 'यह प्रकृति के विरुद्ध है' या 'यह पश्चिमी प्रभाव है' जैसी भ्रांतियाँ समलैंगिक युगलों को सामाजिक बहिष्कार का शिकार बनाती हैं। धार्मिक ग्रंथों और परंपराओं की रूढ़िवादी व्याख्याएँ समलैंगिक संबंधों को स्वीकारने में बड़ी बाधा बनती हैं । फिल्म 'अनफ्रीडम'' में एक ऐसा दृश्य है जो इस विश्वास को शक्तिशाली रूप से दर्शाता है कि समलैंगिकता एक पश्चिमी प्रभाव है । साधु ने सखी और लीला को नदी किनारे में नग्न अवस्था में देखते हुए वे पुलिस को इस खबर की सूचना देते हैं और दोनों से कहता है कि "आप विदेशी हमारी संस्कृति को प्रदूषित करने के लिए यहां आए हैं[28]" इस बयान के जरिए निर्देशक भारतीयों की मानसिकता को दिखाने की कोशिश की है, उस कालखंड में समाज की धारणा यह थी कि समलैंगिकता हमारे देश की मौलिक संस्कृति का हिस्सा न होकर,

विदेशी प्रभाव के माध्यम से प्रस्तुत किया गया एक विचार था । यह दृश्य समलैंगिकता को पश्चिमी आयात के रूप में धारणा और सदियों से भारतीय संस्कृति के भीतर इसके अस्तित्व की वास्तविकता के बीच तनाव को रेखांकित करता है ।

2.4.4.2 भारत में प्रचलित रूढ़िवादी परंपराएँ और मान्यताएँ

रूढ़िवादी विचारों में पति को परिवार का मुखिया और "पालनकर्ता" माना जाता है। पत्नी को "गृहलक्ष्मी" या परिवार की देखभाल करने वाली भूमिका तक सीमित कर दिया जाता है । इस व्यवस्था में पति के आदेश और निर्णय को सर्वोपरि मानने का दबाव होता है । फिल्म 'फायर' में परंपरागत ढ़ाचे पर चलने वाले परिवार को नकारती है । भारतीय स्त्री की विशेषता यह है कि वह अपने बारे ना सोच कर पहले पति व परिवार के लिए सोचना चाहिए । इसलिए स्त्री का भविष्य का निर्णय हमेशा पति पर निर्भर रहा है । इस वजह से खुद की ज़िदगी जीने का अधिकार समाज उससे छीन लेती है । फिल्म हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि - क्यों एक औरत प्यार की तलाश में अपने जीवन को स्वाहा कर दे? पति से वह क्यों हर बार गिड़ागिड़ा कर प्यार माँगे ? हमारी भारतीय संस्कृति में औरतों पर अत्याचार करना मर्दानगी की श्रेणी में आता है लेकिन यदि कोई आदमी अपनी पत्नी को समय, प्यार व सम्मान दे तो वह जोरु का गुलाम कह लाता है ।

2.4.4.3 पुलिस द्वारा बलात्कार

पुलिस द्वारा बलात्कार का मुद्दा, विशेषकर लेस्बियन महिलाओं के संदर्भ में, एक गंभीर मानवाधिकार हनन और सत्ता के दुरुपयोग का प्रतीक है । फिल्म 'अणफ्रीडम' में एक हृदयविदारक दृश्य क्वीर समुदाय के खिलाफ समाज की क्रूरता और पितृसत्तात्मक सोच को उजागर करता है । लीला के पिता, उसकी समलैंगिकता को 'ठीक' करने और उसे उसकी पहचान के लिए दंडित करने के इरादे से, पुलिस अधिकारियों को बुलाते हैं । पुलिस, जो कानून और न्याय की रक्षक मानी जाती है, यहाँ पितृसत्ता और हिंसक मानसिकता का

प्रतीक बन जाते है । इस दृश्य में पुलिस अधिकारी लीला को अपमानित और बलात्कार करते हुए कहते हैं, "तुझे तेरी जगह दिखाने का यही तरीका है । जो प्राकृतिक नहीं है, उसे खत्म करना जरूरी है,"[29] जो कानून लागू करने वाली संस्थाओं की एल जी बी टी क्यु + अधिकारों को न समझ पाने वाली मानसिकता को उजागर करता है । लीला की करुण पुकार, "मुझे मेरी पहचान के लिए मत सजा दो । यह मैं हूँ, इसे बदला नहीं जा सकता"[30], उसकी गहरी पीड़ा और स्वतंत्रता की चाह को व्यक्त करती है । यह दृश्य न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पहचान की लड़ाई को दर्शाता है, बल्कि समाज और कानून द्वारा एल जी बी टी क्यु समुदाय पर किए गए अन्याय और हिंसा की कठोर सच्चाई को भी सामने लाता है ।

निष्कर्ष

हिंदी सिनेमा में समलैंगिकता का चित्रण ऐतिहासिक रूप से जटिल और समस्याग्रस्त रहा है, लेकिन 'धारा 377' के 2018 के ऐतिहासिक फैसले ने इसे एक नया मोड़ दिया। 'फायर' (1996) और 'गर्लफ्रेंड्स' (2004) जैसे शुरुआती प्रयासों ने विषय उठाए, लेकिन सनसनीखेज चित्रण और सामाजिक वर्जनाओं से घिरे रहे । 2018 के बाद, 'एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा' (2019) और 'बधाई दो' (2022) ने संवेदनशीलता और समावेशिता के साथ क्वीर जीवन को दिखाया । 'अनफ्रीडम' (2014) और 'माज़ा माँ' (2022) ने सामाजिक उत्पीड़न और स्वीकृति के मुद्दों को गहराई से छुआ । समलैंगिक कहानियों का यह विकास भारतीय सिनेमा में परिपक्वता और बदलाव का प्रतीक है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी सिनेमा : बीसवीं से इक्कीसवीं तक, सत्यजित रे, पृ 12
2. पटकथा लेखन : एक परिचय, मनोहर श्याम जोशी, पृ 26
3. www.viswakosh.com
4. हिन्दी सिनेमा के सरोकार, सुधीर सुमन, आजकल पत्रिका, उक्तूबर, 2012, पृ 3
5. भारत में सिनेमा, नई दुनिया, फिल्म विशेषांक 1996, इंदौर, पृ 169
6. हिन्दी सिनेमा का सौ वर्ष, दिलचष्प पृ 3
7. मई ब्रतर ईस निखिल, मध्य संवाद, 2005
8. https://hindi.lawrato.com/%E0%A4%87%E0%A4%82%E0%A4%A1%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%A8-%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%82%E0%A4%A8/%E0%A4%86%E0%A4%88%E0%A4%AA%E0%A5%80%E0%A4%B8%E0%A5%80/%E0%A4%A7%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%BE-377

   धारा के तहत, अगर कोई व्यक्ति किसी पुरुष, महिला, या पशु के साथ प्रकृति के ख़िलाफ़ शारीरिक संबंध बनाता है, तो उसे आजीवन कारावास या 10 साल तक की जेल हो सकती थी । इसके साथ ही जुर्माना भी लगाया जा सकता था ।
9. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, 2019
10. आशतुोषराणा, इकंडया टुडे, 29 सितंबर 2014
11. फायर , निर्देशक- दिपा मेहता, 1996
12. फायर , निर्देशक- दिपा मेहता, 1996
13. फायर , निर्देशक- दिपा मेहता, 1996
14. समांतर सिनेमा - अनदेखा पहलू - हुबनाथ, पृ सं 277
15. ह्युमन सोसाईटी , सुरजीत पब्लिकेशन, पृ 4, 2007

16. फायर , निर्देशक- दिपा मेहता, 1996

17. माजा माँ, निर्देशक-आनंद तिवारी, 2022

18. मार्गरीटा विद अ स्ट्रॉ, निर्देशक- शोनाली बोस, 2015

19. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, निर्देशक- शैली चोपडी दर, 2019

20. अणफ्रीडम, निर्देशक- राजा अमित कुमार, 2014

21. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, निर्देशक- शैली चोपडी दर, 2019

22. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, निर्देशक- शैली चोपडी दर, 2019

23. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, निर्देशक- शैली चोपडी दर, 2019

24. फायर , निर्देशक- दिपा मेहता, 1996

25. समानंतर सिनेमा - अनदेखा पहलू - हुबनाथ, पृ सं 277.

26. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, निर्देशक- शैली चोपडी दर, 2019

27. एक लड़की को देखा तो ऐसा लगा, निर्देशक- शैली चोपडी दर, 2019

28. अणफ्रीडम, निर्देशक- राजा अमित कुमार, 2014

29. अणफ्रीडम, निर्देशक- राजा अमित कुमार, 2014

30. अणफ्रीडम, निर्देशक- राजा अमित कुमार, 2014